नियमसार, २३०-कलश।

तत्त्वेषु जैन-मुनि-नाथ-मुखारविन्द-
व्यक्तेषु भव्य-जनता-भव-घातकेषु।
त्यक्त्वा दुराग्रह-ममुं जिनयोगि-नाथः,
साक्षाद्युनक्ति निजभावमयं स योगः।।२३०।।

श्लोकार्थः इस दुराग्रह को (-उपरोक्त विपरीत अभिनिवेश को) छोड़कर,... वीतराग मुनियों ने जो भाव कहे, उनके अतिरिक्त कहनेवाले का आग्रह छोड़कर। जैन मुनिनाथ दिगम्बर सन्त, केवली के मार्गानुसारी, उन्होंने जा कहा, उससे विरुद्ध कहनेवाले का आग्रह छोड़कर देना। जरा सूक्ष्म पड़ता है। इसमें तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वे कोई जैन नहीं; अजैन हैं, क्योंकि जैन की जो शैली देव-गुरु-धर्म की सब बदल डाली। इसलिए उन्हें मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने अन्यमत में डाला है और अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने '**नग्गे मोखो भणियो सेसा उमग्गा**' नग्न मुनियों को आत्मज्ञानसहित हैं, उन्हें मुक्ति है; इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में '**नग्गे मोखो भणियो**' नग्न को मुक्ति है, बाकी सब उन्मार्ग है। शान्तिभाई! कहीं सुना नहीं था वहाँ? बिहार में भाषण करते वहाँ... आहाहा! यहाँ शब्द क्या है?

जैन मुनिनाथों के। आहाहा! जैन मुनिनाथ कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि। उनके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी। आहाहा! अन्य को छोड़कर, जैन मुनियों के नाथ, गणधरदेव आदि जैन मुनियों के नाथ। आहाहा! उनके मुखारविन्द से प्रगट हुई। मुखरूपी कमल। आहाहा! दिगम्बर सन्त, परम्परा के केवली के मार्गानुसारी। सनातन सत् के आराधक, सनातन सत् के सेवक, उनके कहे हुए। आहाहा! उनके मुखारविन्द से प्रगट हुए। इसके अतिरिक्त दूसरों के कहे हुए नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सब ऐसा कहते हैं कि हमारा सत्य है। भाई! तू विचार कर। यह तो अनादि सनातन...

भगवान महाविदेह में विचरते हैं, वहाँ यह मार्ग चलता है। वह मार्ग यह है। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में से जाकर आये, फिर उन्होंने यह सब शास्त्र बनाये। उसमें यह शास्त्र तो स्वयं के लिये बनाया। उसमें यह डाला है। जिननाथों के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी, उनके तत्त्वों की श्रद्धा कर। देवीलालजी!

मुमुक्षु :- १३९ गाथा रह गयी। कल ये नहीं थे। कल चल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- चल गयी है। चल गयी है। आया था। परम जिनयोगीश्वर... आ गयी गाथा। यहाँ तो उसका कलश कहा अब।

मुनि दिगम्बर सन्त भावलिंगी और द्रव्य से नग्न, उनके मुखारविन्द से निकली

हुई वाणी, इसके अतिरिक्त किसी की वाणी, वीतराग की वाणी नहीं है। आहाहा! **जैनमुनिनाथों के (-गणधरदेवादिक जैन मुनिनाथों के) मुखारविन्द से प्रगट हुए,...** आहाहा! गणधरों के मुख से निकली हुई। आहाहा! यह टीका करनेवाले भी ऐसा कहते हैं। टीका करनेवाले तो मुनि हैं, तथापि कहते हैं कि यह टीका... पहले कलश आ गया है। यह टीका करनेवाले हम मन्दबुद्धि तो कौन? यह टीका तो गणधरदेव से चली आयी है। पहले कलशों में लेख हैं। आहाहा! गणधरदेव, तीर्थंकरदेव... तब से इसकी यह टीका चली आयी है। स्वयं मुनिराज कहते हैं, हम मन्दबुद्धि तो कौन? है?

पाँचवाँ (कलश) **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से...** आहाहा! कैसी सन्धि करते हैं! है? पहले शुरुआत का पाँचवाँ बोल (श्लोक) **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की...** आहाहा! और श्रुतज्ञानी जो बाद में हुए, उनकी **परम्परा से अच्छी तरह...** उनकी परम्परा... आहाहा! उसे भी भलीभाँति **व्यक्त किये गये...** यह नियमसार के अर्थ, **इस परमागम के अर्थसमूह का कथन...** यह परमागम है। इसके अर्थ का **कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। **हम मन्दबुद्धि तो कौन?** गणधरों से चली आयी यह टीका है। मेरे घर का इसमें कुछ नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात!

जैनमुनिनाथों के (-गणधरदेवादिक जैन मुनिनाथों के) मुखारविन्द से प्रगट हुए, भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले... वापस बात ऐसी है कि इस वाणी में ऐसा है कि भव का नाश हो जाए। भव रहे नहीं, ऐसी यह वाणी है। चैतन्यतत्त्व को बतलानेवाली और भव का अभाव बतानेवाली। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसे तत्त्व को बतलानेवाली। मुखारविन्द से निकली हुई, भव्य के भव का घात करनेवाली। आहाहा! भव्यजनों के, भव्यजनों के, योग्य जीव। आहाहा! अभव्य तो कहीं...

भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले... आहाहा! यह तत्त्व... वह भव्य जीवों के भव का नाश करनेवाला तत्त्व है। इन **तत्त्वों में जो जिनयोगीनाथ...** आहाहा! **(जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** आहाहा! निजभाव-वीतरागी परिणति को वीतरागी त्रिकाली स्वभाव के साथ जोड़ता है। आहाहा! उन गणधरों के मुख में से यह निकला और श्रुत के धारक परम्परा से सन्तों यह कहते आये हैं। कम, अधिक, विपरीत

सब निकाल डालकर। आहाहा! ऐसी यह वाणी है। कहते हैं कि **निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** भव्यजनों के भव का नाश करनेवाले तत्त्व हैं। आहाहा!

योग्य जीव जो है, उन्हें यह वीतराग वाणी ऐसी मिले, उसे उन तत्त्वों में भव्यों के भव का नाश करनेवाले तत्त्व हैं। आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे, गणधर के मुख से निकाली हुई, टीका भी उनसे की हुई चली आती है। आहाहा! यह तत्त्वों का स्वरूप, यह जो बात भव्य जीव को जँचे, उसके भव का नाश हो जाता है। आहाहा! है ? **भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले...** पाठ में है न ? **भव्यजनताभवघातकेषु।** आहाहा! भव्यजन... है ? **भव्यजनताभवघातकेषु।** भव्यजन के भव का घात करनेवाली यह वाणी है। आहाहा! भव उत्पन्न करे, वह यह वाणी नहीं है। आहाहा!

जो जिनयोगीनाथ... मुनि को उद्देश कर बात की है। **(जैन मुनिवर) निज भाव को...** अपने वीतरागी भाव को, पर्याय को, प्रगट पर्याय जो वीतरागी है, उसे **साक्षात् लगाता है,...** द्रव्य के साथ जोड़ते हैं। आहाहा! अलौकिक! यह दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, यह करना, वह बात कहीं नहीं आयी इसमें। आहाहा! भव्य जीव के भव का घात करनेवाली और वह मुखारविन्द-गणधर के मुख से निकली हुई यह वाणी भव्य जीव के (भव का) घात करनेवाली है। आहाहा! जिसमें से भव का घात हो जाए। भव रहे नहीं। आहाहा! उसे माननेवाले को शंका पड़े नहीं। वीतराग के कहे हुए तत्त्व को माननेवाले को सन्देह रहे नहीं। भवभ्रमण का सन्देह रहे नहीं। आहाहा!

अब यह महिला ऐसा कहती है कि भाई! अपन अभव्य है या काललब्धि पकी है, यह अपन तो जानते नहीं। अर र! ऐसा चलता है, बड़ा २५-२५ लाख का मकान किया। जम्बूद्वीप किया, वहाँ हस्तिनापुर में मेरुपर्वत (बनाया)। लोग तो बहुत इकट्ठे होते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहती हैं कि अपन अभव्य हैं, या काललब्धि पकी, यह भगवान जाने। अरे! प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो वीतराग की वाणी ने तत्त्व कहे, वे जिसे अन्दर में जँचे, उसके भव का घात करनेवाले हैं। आहाहा! उसे भव रहता ही नहीं। आहाहा! और जिसे भव की शंका रहती है, उसे तत्त्व बैठा नहीं। आहाहा! जीवतत्त्व आदि राग से भिन्न भगवान... आहाहा! अपनी पर्याय से सहित; अपनी पर्याय पर से नहीं और अपनी पर्याय से रहित नहीं। आहाहा! ऐसा

जो तत्त्व भगवान ने कहा, वह बात जिसे अन्दर में बैठी, वह भव्य जीवों को भव का घात करनेवाली है। आहाहा! अभव्य हूँ या नहीं, यह तो प्रश्न ही यहाँ नहीं। मैं अभव्य हूँ या अनन्त संसारी हूँ - यह प्रश्न ही यहाँ नहीं। आहाहा!

यह तत्त्व, भगवान तीन लोक के नाथ के श्रीमुख से निकली हुई वाणी, गणधरों की, श्रुतधरों की परम्परा से चली आयी है। वे तत्त्व जिसे जँचे, उस भव्य जीव के भव का तो घात ही होता है। उसे अनन्त भव नहीं रहते। वह अभव्य है, यह नहीं रहता, परन्तु उसे अनन्त भव नहीं रहते। आहाहा! कितनी मीठी वाणी! और टीका करनेवाले कहते हैं कि यह तो गणधरों से चली आयी है। गौतमस्वामी उनके (महावीरप्रभु के) गणधरों से यह टीका चली आयी है। आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे... तीन लोक के नाथ जो गणधर, उनसे रचित वाणी... आहाहा! उनके कहे हुए तत्त्व जिसके अन्तर में जँचे, उसके भव का घात हो जाता है। उसे अल्प काल में मुक्ति हो जाती है। आहाहा! है या नहीं? आहाहा!

भगवान ने देखा होगा, तब होगा। भगवान ने देखा होगा, वह होगा और क्रमबद्ध में जब जायेगा, तब भव नहीं रहेंगे। - यह बात ही नहीं की। यह जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध भी आ गया और भगवान ने देखा, यह भी आ गया। समझ में आया? आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे, भगवान के कहे हुए तत्त्व, दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए तत्त्व, यह जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध में यही आया होता है और भगवान ने यही देखा होता है। उसे अब भव नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह?

मुमुक्षु :- उसे भव ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तत्त्व जँचे, उसे (भव नहीं)। तुम क्रमबद्ध कहो कि एक द्रव्य-दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहो, और ऐसा है। परन्तु यह वह तत्त्व जिसे जँचे... आहाहा! और भगवान ने देखा, तब उसके भव का अभाव होगा, यह व्यवहार से। यह भी तब उसे जँचे कि यह तत्त्व जँचे, तब सब बात उसे जँच गयी। भगवान ने देखा है, वह क्रमबद्ध में हुआ। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह भी हुआ। मेरी पर्याय मुझे स्पर्श करती है, तब भव का घात हुआ। आहाहा! मेरी पर्याय मेरे द्रव्य को स्पर्श करे, तब भव का घात हुआ। आहाहा! बहुत बातें...

गणधरों ने-मुनिनाथ ने कहे हुए तत्त्व... आहाहा! यह तत्त्व जिसे जँचे। आहाहा!

और इसके अतिरिक्त दूसरे आग्रह छोड़ दिये, उसे भव का नाश करनेवाले तत्त्वों में **जो जिनयोगीनाथ (जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** धारणा में नहीं, कल्पना में नहीं। अपनी निर्मल पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ता है, **उसका वह निजभाव सो योग है।** उसका वह निज भाव, वह योग अर्थात् धर्म है। आहाहा! एक कलश में कितना कहा! आहाहा! तीर्थंकरों और गणधरों के मुख से निकले हुए तत्त्व, वे जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध आ गया। भगवान ने भी ऐसा देखा था - ऐसा आ गया और उसके भव का घात हो गया। अब उसे भव नहीं होते। आहाहा!

वे कहें कि अपने को खबर नहीं पड़ती। मुनि को शुभयोग ही होता है, ऐसा और वे एक है। कैसे ? श्रुतसागर। शान्तिसागर के मार्गानुसारी। उनके पद में आये हैं धर्मसागर और ये पढ़े हुए हैं। इन्हें पदवी नहीं आयी। वे ऐसा कहते हैं कि अभी शुभयोग ही होता है। अरे रे! तब इन तत्त्वों में भव के घातवाला भाव तो अभी नहीं—इसका अर्थ यह हुआ। यहाँ तो आचार्य पुकार करते हैं। आहाहा! देवीलालजी! है ऐसा ?

पंचम काल में भी निर्ग्रन्थ मुनि, गणधर, उनकी परम्परा से, सूत्र की परम्परा से आये हुए तत्त्व; वे तत्त्व जिसे जँचे, उसे क्रमबद्ध में भव का घात होने का काल भी आ गया; भगवान ने देखा, यह भी आ गया और उसे भव होते नहीं, अल्प काल में मुक्ति होती है। आहाहा! ऐसी बात है। वादविवाद से पार नहीं पड़ता। वस्तु-तत्त्व जो भगवान के मुख से निकली हुई वाणी और गणधरों... उन्होंने कहे हुए तत्त्व जिस स्वरूप से हैं, उस स्वरूप से अन्तर में जँचे। उसके भव का घात कर डालते हैं। आहाहा! बहुत सरस बात आयी। आहाहा! उसे शंका नहीं रहती कि यह तत्त्व मुझे जँचे। मेरे भव होंगे ? यह शंका उसे नहीं रहती। यह शंका जिसे रहे, उसे यह तत्त्व जँचे नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जो निजभाव, वह योग है। आहाहा!

गाथा - १४०

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।।१४०।।

वृषभादि-जिनवरेन्द्रा एवं कृत्वा योगवर-भक्तिम्।
निर्वृतिसुख-मापन्नास्तस्माद्धारय योगवरभक्तिम्।।१४०।।

भक्त्यधिकारोपसंहारोपन्यासोऽयम्। अस्मिन् भारते वर्षे पुरा किल श्रीनाभेयादिश्रीवर्धमानचरमाः चतुर्विन्शतितीर्थकरपरमदेवाः सर्वज्ञवीतरागाः त्रिभुवनवर्तिकीर्तयो महादेवाधिदेवाः परमेश्वराः सर्वे एवमुक्तप्रकारस्वात्मसम्बन्धिनीं शुद्धनिश्चययोगवरभक्तिं कृत्वा परमनिर्वाणवधूटिकापीवरस्तनभरगाढोपगूढनिर्भरानन्दपरमसुधारसपूरपरितृप्तसर्वात्मप्रदेशा जाताः, ततो यूयं महाजनाः स्फुटितभव्यत्वगुणास्तां स्वात्मार्थपरमवीतरागसुखप्रदां योगभक्तिं कुरुतेति।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥

अन्वयार्थ : [वृषभादिजिनवरेन्द्राः] वृषभादि जिनवरेन्द्र [एवम्] इस प्रकार [योगवरभक्तिम्] योग की उत्तम भक्ति [कृत्वा] करके [निर्वृतिसुखम्] निर्वृति सुख को [आपन्नाः] प्राप्त हुए; [तस्मातः] इसलिए [योगवरभक्तिम्] योग की उत्तम भक्ति को [धारय] तू धारण कर।

टीका : यह भक्ति अधिकार के उपसंहार का कथन है।

इस भारतवर्ष में पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग, त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले महादेवाधिदेव परमेश्वर—सब, यथोक्त प्रकार से निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके, परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से सर्व आत्मप्रदेश में अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर से परितृप्त हुए; इसलिए

***स्फुटित-भव्यत्वगुणवाले हे महाजनों! तुम निज आत्मा को परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो।**

गाथा - १४० पर प्रवचन

१४०, आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं कि यह बात तो ऋषभदेव भगवान से अभी तक सब यह आराधकर मुक्ति प्राप्त हुए हैं। **उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।** ऐसे योग अर्थात् आत्मा का जुड़ान करके। व्यवहाररत्नत्रय से होता है - ऐसा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय तो पर में जुड़ान है। आहाहा!

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।।१४०।।

नीचे हरिगीत।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
(निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥)

यह भक्ति, हों! श्रेष्ठ भक्ति आत्मा की। भगवान की भक्ति नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! तथा व्यवहाररत्नत्रय से भव का घात होता है, इससे इनकार किया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी वीतराग की वाणी! परमात्मा का विरह पड़ा, तो भी उनकी वाणी भव का घात करनेवाली; यह वाणी जिसे जँचे, उसे। यह भाव रह गये हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! केवली और तीर्थंकर और गणधर। केवलज्ञानियों की उत्पत्ति का भी इस काल में विरह पड़ा, कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी रहे नहीं। देव आकर कोई वाद करते नहीं कि तुम ऐसे हो। आहाहा! ऐसे काल में जिसे गणधरों से कथित और सूत्र परम्परा से आचार्य से आये हुए, वह तो यहाँ दिगम्बर में आये हैं। दूसरे जगह ऐसी परम्परा कहीं नहीं है। आहाहा! एक बार कुछ बात आयी थी। अमरचन्द मुनि नहीं? अमरचन्द। उसने कहा था कि यह सूत्र हैं, वे आचार्य के किये हुए हैं। मिथ्या है - ऐसा नहीं कह सके। वह तो उसकी मान्यता। आचार्यों ने किये हुए हें - ऐसा कहे। भाई चन्दुभाई कहते थे। नहीं? आहाहा!

* स्फुटित=प्रकटित; प्रगट हुए; प्रगट।

मुमुक्षु :- अमरभारती अखबार में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आया था।

मुमुक्षु :- पूरा-पूरा लिखा था कि इसमें... बहुत हुआ है। कितनी ही... गाथायें इसमें डाली हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आचार्यों के किये हुए, वे कौन से आचार्यों के? जैन परम्परा के जो आचार्य, वे आचार्य नहीं। आहाहा! क्योंकि उन परम्परा के आचार्य-प्रमाण तो वह बात मिलती नहीं। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं... आहाहा! गजब किया है न!

अब, यह १४०।

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की॥१४०॥

पंचम काल के शिष्य को, ऋषभ आदि भगवान ने जो किया हुआ, वह पंचम काल के शिष्य को कहते हैं कि तू भी कर। आहाहा! यह पंचम काल है, हल्का काल है; इसलिए भगवान ने किया हुआ और कहा हुआ, यह बात तुझे नहीं बैठेगी - ऐसा नहीं कहा, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहा, प्रभु! तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान से लेकर चौबीस तीर्थंकरों और उनके गणधरों और उनके सन्तों, उन्होंने जो परम्परा वाणी आयी और उन्होंने सुनकर भव का घात किया, हे शिष्य! उसे तू जान। पंचम काल के श्रोता हैं। आहाहा! अप्रतिबुद्ध है। समयसार में आता है। उसे ऐसा कहते हैं कि हे भाई! यदि तू भगवान के कहे हुए तत्त्वों को बैठाये (स्वीकार करे) तो भव का घात तुझे इस भव में यहाँ होगा। पंचम काल में जीव है और भगवान का विरह है; इसलिए भव का घात नहीं होगा - ऐसा मानना नहीं, बापू! आहाहा! गजब काम किया है न! ऋषभदेव भगवान ने किया, वह शिष्य को कहते हैं कि तू कर। आहाहा! क्योंकि मार्ग तीनों काल में (एक ही है)। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' जो ऋषभदेव भगवान ने असंख्य अरब वर्षों पहले किया था, वह शिष्य को कहते हैं कि उन्होंने किया, वैसा तू कर। उन्होंने किया, वैसा तू कर। आहाहा! है?

टीका : यह भक्ति अधिकार के उपसंहार का कथन है। इस भारतवर्ष में... इस भारतवर्ष में **पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव**- आहाहा! इनके विशेषण तो देखो, अब! उनकी परम्परा से आयी हुई वाणी, ऐसा

कहते हैं। विशेषण तो देखो इनके! वे **चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग, त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** आहाहा! **महादेवाधिदेव परमेश्वर—** आहाहा! इतने तो विशेषण दिये। पंचम काल के शिष्य को (कहते हैं), ऐसे परमात्मा हो गये, उन्होंने किया, वैसा तू कर, प्रभु! आहाहा! पंचम काल में नहीं हो सकता - ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

इस भारतवर्ष में पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर.... 'ऋषभदेव' भगवान से लेकर **श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर-परमदेव-सर्वज्ञवीतराग,...** आहाहा! परमदेव तो कहा, परन्तु सर्वज्ञ-वीतराग। **त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** तीन लोक में जिनकी कीर्ति व्याप्त है। आहाहा! महादेवाधिदेव हैं वे। वे महादेवाधिदेव हैं। वे परमेश्वर हैं। आहाहा! वे **सब, यथोक्त प्रकार से निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली...** यथोक्त अर्थात् इसमें कहा गया है, उस **प्रकार से निज आत्मा के साथ...** आहाहा! परमात्मा और वीतराग की भक्ति आवे, परन्तु वह तो शुभभाव है। वह कोई मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! इसलिए नहीं आवे, ऐसा भी नहीं है। मुक्ति का कारण नहीं; बन्ध का कारण है; इसलिए न आवे (-ऐसा नहीं है)। गणधरों को भी शुभभाव आता है। आहाहा! तो भी उसकी कोई कीमत नहीं।

यहाँ तो उन परमेश्वरों ने सबने यथायुक्त। यथा अर्थात् जैसे आत्मा की बात कही है, उस **प्रकार से निज आत्मा के साथ...** आहाहा! भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु, परमपारिणामिक ज्ञायकभाव सर्वांग आनन्द और वीर्य से भरपूर। उसके वीर्य के लिये पर की आवश्यकता नहीं। ऐसे वीर से भरपूर वीर है। आहाहा! ऐसे **आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली...** ऐसे आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** आहाहा!

मूल बात तो यह है कि जिसे आत्मा की कीमत नहीं। आत्मा परमेश्वर है। आहाहा! भगवान है, देवाधिदेव है, ईश्वर है, सम्पूर्ण ज्ञान और वीतरागता से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों का सागर प्रभु है। ऐसा जो आत्मा... अहाहा! उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** शुद्धनिश्चययोग की अन्तर की उत्तम भक्ति करके... आहाहा! **परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से...** अर्थात् जैसे कि स्तन पुष्ट होता है, वैसे पर्याय में अनन्त गुण व्यक्त होकर पुष्टि को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! वे शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सत्तारूप से थे, इस पर्याय में उनकी प्रगट दशा आयी। जितने गुण हैं, उतनी अनन्त पर्यायें बाहर आयी है। आहाहा!

अनन्त पर्यायें भी पुष्ट होकर आयी है। आहाहा! कोई प्राणी अनन्त पर्याय की व्यक्तता रहित किसी काल में नहीं हो सकता। अनन्त पर्यायों की प्रगटता रहित कोई प्राणी—आत्मा तीन काल में नहीं हो सकता। ऐसा यह भगवान आत्मा... अनन्त पर्यायें तो अमुक अंश में निगोद को भी प्रगट है। आहाहा!

यह तो **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,....** अन्तर में एकाग्र होकर आनन्द के सागर को स्पर्श कर, छूकर... आहाहा! उसका वेदन करके **परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से...** अर्थात् कि आत्मा की पूर्ण पर्याय की पुष्टि के आलिंगन से, अपनी अनन्त व्यक्त पर्यायें, शुद्ध-पुष्ट होकर निकली... आहाहा! जैसा शुद्ध शक्तिरूप है, वैसी ही पर्याय भी शुद्ध पूर्णरूप प्रगट हुई है। आहाहा! वह अनन्त शक्ति बाहर आयी। अनन्त पर्यायों रहित द्रव्य कभी होता नहीं। एक पर्याय नहीं, परन्तु अनन्त पर्यायें। यहाँ कहते हैं कि अनन्त पर्यायें पुष्ट हुई हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- 'सर्वगुणांश वह सम्यक्त्व'—यह आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो पुष्ट हो गयी। जो है, वह प्राप्त की प्राप्ति हो गयी है। जुड़ान किया, वहाँ उसमें - पर्याय में आ गयी सब। आहाहा! ऐसा उपदेश है। साधारण सम्प्रदाय के आग्रहियों को तो यह बात बैठती नहीं, सुनने को मिलती नहीं। यह तो एकान्त... यह की यह बात... यह बात (करते हैं, ऐसा कहते हैं)।

यहाँ तो स्वयं मुनिराज कहते हैं कि ऋषभदेव भगवान, तीर्थंकरों और गणधरों ने तथा सन्तों ने जो बात की है, उस योग को तू तेरे आत्मा के साथ अभी पंचम काल में भी जोड़। ऐसा निषेध न कर कि पंचम काल है, हल्का काल है, केवली का विरह है, तीर्थंकर का विरह है, ऐसा रहने दे। तेरा विरह तुझे नहीं है, प्रभु! आहाहा! पर्याय का विरह नहीं तुझे, प्रभु! पर्याय बिना का द्रव्य कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! उस पर्याय की यह बात चलती है। वस्तु तो वस्तु है। परन्तु परम निर्वाण वधू-स्त्री के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से। पूर्ण पर्याय का पूर्ण अनुभव, पूर्ण पर्याय का पूर्ण अनुभव, पूर्ण पर्याय का पूर्ण आलिंगन। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। क्या कहना? वचनातीत बात, विकल्पातीत बात... आहाहा! उसे किस प्रकार कहना? उसकी मर्यादा गणधरों और सन्तों ने की, उस प्रकार से कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्तर की वस्तु अखण्डानन्द से भरपूर पूर्ण आनन्द और शान्ति से भरपूर तत्त्व, उसे स्पर्श। उसकी स्पर्शता तुझे तेरी पर्याय में पुष्ट, वह सब पर्यायें पुष्ट अर्थात् पूरी निकलेगी। आहाहा! **गाढ़ आलिंगन से सर्व आत्मप्रदेश में अत्यन्त-आनन्दरूपी...** आहाहा! अब क्षेत्र लिया। पहले पर्याय ली। पर्याय भी वह असंख्य प्रदेश में सब प्रगट हुई। कोई प्रदेश खाली नहीं। आहाहा! जैन के अतिरिक्त, वीतराग के अतिरिक्त असंख्य प्रदेश कहीं नहीं है। आत्मा के असंख्य प्रदेश, इसका वे विवाद उठाते हैं विद्यानन्द। **अपदेशसंतमज्झो** (समयसार, गाथा १५) वे इसका अर्थ अखण्ड करते हैं, अखण्ड है। प्रदेश-प्रदेश नहीं। अरे! प्रभु! परन्तु उन्हें माननेवाले निकलते हैं। प्रभु! क्या हो? कोई देव नहीं आता, कोई अवधिज्ञान नहीं होता। आहाहा! परोक्ष ज्ञान से काम लेना। स्व की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है परन्तु यह परोक्ष है न! असंख्य प्रदेश कहीं प्रत्यक्ष नहीं दिखते। आहाहा!

अत्यन्त-आनन्दरूपी... जिसने यह भगवान आत्मा परमेश्वर ने, तीर्थंकरों ने, मुनियों ने कहा, वैसा आत्मा दृष्टि में लेकर जो उसमें एकाग्र होता है, उसे सब पर्यायें पूर्ण-पुष्ट-पूर्ण प्रगट होती हैं। आहाहा! पूर्ण प्रगट होकर अत्यन्त आनन्दरूपी... आहाहा! वहाँ अत्यन्त आनन्द आता है। अनन्त गुणों की पर्यायें प्रगट होती हैं। अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं, उन सब पर्यायों में अनन्त आनन्द आता है। आहाहा! **अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर से...** आहाहा! परम-सुधारस अमृत का पूर बहता है। आत्मा तो अमृत का पूर बहता है। पर्याय में पूर बहता है, कहते हैं। द्रव्य में तो पूर भरा है... आहाहा! परन्तु जिसने उसमें एकाग्रता की, उसकी पर्याय में आनन्द का पूर बहता है। आहाहा!

परमसुधारस के पूर से... परमसुधारस, यह अमृत। आहाहा! जीव का जीवन अमृत है। जीव का जीवन जहर, राग, पुण्य-पाप, यह उसका जीवन नहीं। आहाहा! जीव का जीवन शुभ और अशुभ, यह उसका जीवन नहीं। आहाहा! उसका जीवन तो अमृत जीवन है, क्योंकि वह अमृत से भरपूर है। आहाहा! किसी से मरे नहीं, किसी को मारे नहीं, पूरे में अधूरा हो नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी पर्यायें अनन्त प्रगटी हैं। आहाहा! परमसुधारस। इसका अर्थ ऐसा हुआ (कि) परम अमृतरस। उसका पूर। आहाहा! पर्याय में, हों! बात करते हैं। पर्याय में परमानन्द का पूर बहता है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख देखने से पर्याय में अनन्त आनन्द का पूर बहता है, कहते हैं। आहाहा!

यह नदी का बड़ा पूर आवे, बहुत जोरदार। हमारे उमराला में बड़ी नदी, बहुत जोरदार, समुद्र जैसी। वह जब दोनों किनारे नदी आवे... समुद्र (लगे)। इस किनारे से उस किनारे जाया नहीं जाए। चाहे जितना होशियार हो। क्या कहलाता है वह? तैराक। सामने शंकर के देवालय जाना हो तो बहुत आगे से जाए, तब वह खिंचाव हो, तब मुश्किल से वहाँ जा सके। इस ओर ऊपर से पड़े। आहाहा! यह सब खबर है। वहाँ हम थे न! सामने जाए। शंकर का मन्दिर सामने है। कोई पूजा करने जाना हो। बहुत दिन हो गये तो वे लोग जिस जगह है, उसके सामने नहीं पड़े। उससे बहुत दूर पड़े। तो दूर पड़े तो खिंचाव करते-करते तो मुश्किल से वहाँ जाए। आहाहा! ऐसा देखा है, हों! वहाँ। यह तो सब ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। आहाहा!

आहाहा! **परमसुधारस के पूर से परितृप्त हुए;...** आहाहा! उसके कारण परितृप्त (हुए)। पर्याय में परितृप्त। अकेला तृप्त नहीं। पूर्ण रीति से, पूर्ण रीति से, सर्व प्रकार से, सर्व प्रकार से तृप्त-तृप्त हुआ। आहाहा! पंचम काल के मुनिराज ऐसी बातें कर गये। आहाहा! उन्हें ऐसा नहीं कि नहीं हो सकेगा। ऐसा नहीं कह गये, प्रभु! आहाहा! कठिन है, ऐसा कह गये, परन्तु नहीं हो सकता - ऐसा नहीं है। आहाहा! इसने बात सुनी नहीं। अन्दर तीन लोक का नाथ देवाधिदेव विराजता है। आहाहा! परमेश्वर। देखो न! कितनी उपमा दी नहीं? परमेश्वर है। सुधारस के पूर से परितृप्त हुए। वे जीव अन्दर में जुड़े। आहाहा! पूरे, जो मुनि हुए, उनकी पर्याय में पूरी तृप्ति आ गयी। आहाहा! तृप्ति आयी। तृप्ति और नहीं तथा तृप्ति बाकी है - ऐसा नहीं। अतृप्ति थोड़ी बाकी है - ऐसा नहीं। तृप्ति पूर्ण हो गयी। आहाहा! परितृप्त हुए, पूर्ण परितृप्त हुए। आहाहा!

इसलिए स्फुटित-भव्यत्वगुणवाले... प्रकटित; प्रगट हुए; प्रगट। ऐसे भव्यत्व गुणवाले **हे महाजनों!** आहाहा! मुनिराज की वाणी तो देखो! **इसलिए स्फुटित...** प्रगट हुए भव्यत्वगुण की शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुए जीवों **हे महाजनों!** एक वचन नहीं लिया। आहाहा! महाजनों लिया न? महाजनों! महाजनों। आहाहा! भव्यत्वगुणवाले हे महाजनों! आहाहा! प्रगट भव्यत्वजीववाले। भव्यत्व तो है। वह नहीं। भव्यत्व तो इसकी शक्ति और त्रिकाल गुण है, परन्तु प्रगट स्फुटित। आहाहा! भव्यता सब स्फुटित-बाहर प्रगट हो गयी। पर्याय में भव्यता, जितने गुण हैं, उनकी सब प्रगट हो गयी। आहाहा! अरे! ऐसा सुना भी नहीं होगा, अभी। आहाहा!

मुमुक्षु :- सुनानेवाला नहीं, फिर कहाँ से सुने ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा ! ऐसी बात है । आहाहा !

सिद्धपना उतारा है । तू सिद्ध है, प्रभु ! सर्व जीव सिद्धसम है । आहाहा ! 'सर्व जीव हैं सिद्धसम जो समझें वे होय ।' आहाहा ! श्रीमद् ने ऐसा कहा है । आहाहा ! सर्व जीव सिद्ध-समान हैं । परमात्मा के पुष्ट गुणों से भरपूर हैं । उसकी दृष्टि करने से पर्याय में पुष्टि कर पूर बहता है । आनन्द के अमृत का पूर बहता है । आहाहा ! इसलिए... आहाहा ! हे प्रगट भव्यत्व गुणवाले महाजनों ! आहाहा ! भव्यत्वशक्तिरूप से है, उसके प्रगटरूप से हुए हे भव्यजीवों ! आहाहा ! मुनिराज की करुणा तो देखो ! विशालता तो देखो ! नहीं हो सकता, अभी पंचम काल है, यह है न अभी ऐसा वापस... साधु, दिगम्बर मुनि कहकर ऐसा कहे - अभी शुभयोग है, दूसरा नहीं । अर र ! प्रभु... प्रभु !.. प्रभु !

हे प्रगट भव्यत्वगुणवाले ! भव्यशक्ति पर्याय में प्रगट हो गयी । भव्यपना तो है, परन्तु पर्याय में प्रगट हो गया है । ऐसे हे महाजनों ! आहाहा ! हे महाजनों ! आहाहा ! गजब टीका ! एक-एक गाथा की टीका... ओहो ! समयसार से भी चढ़ जाता है । आहाहा ! **तुम निज आत्मा को...** हे महाजनों ! **तुम निज आत्मा को...** अपने आत्मा को **परम वीतराग सुख की देनेवाली...** आहाहा ! **निज आत्मा को परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो ।** आहाहा ! इसका नाम भक्ति । आहाहा ! वीतराग **परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो ।** आहाहा ! ऐसे शब्द सुनने को मिलना मुश्किल है । आहाहा !

हे महाजनों ! आहाहा ! **तुम निज आत्मा को...** आहाहा ! **परम वीतराग सुख की...** अकेला नहीं । परम वीतराग सुख । आहा.. ! पर्याय में, हों ! **परम वीतराग सुख की देनेवाली...** कौन ? **ऐसी वह योगभक्ति...** स्वरूप में जुड़ान । आहाहा ! आनन्द के नाथ में जुड़ान करना, इसका नाम भक्ति । आहाहा ! ऐसी भक्ति करो कि जिससे परमानन्द की धारा बहे और पर्याय में परमानन्द का पूर बहे । आहाहा ! है न ? **ऐसी वह योगभक्ति करो ।** अब इस गाथा के श्लोक कहेंगे । (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)